International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
Received: 17-06-2019; Accepted: 20-07-2019
www.educationjournal.in
Volume 4; Issue 5; September 2019; Page No. 44-46

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता के नयापन का विश्लेषण

डॉ. अमिय कुमार साहु
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी) एवं प्रमुख, भाषा संकाय, राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, खड़कवासला, पुणे, भारत

सारांश
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना हिन्दी की नई कविता के बहुत ही प्रख्यात कवि रहे हैं। उनकी कविताएं वस्तु और भाषा के तौर पर पहले के कवियों से बहुत ही अलग हैं। वे अपने कविता को पुरानी परिपाटी के तौर पर रचने के आदी नहीं है। वस्तु और रूप के स्तर पर उनकी हर कविता में एक नयापन देखने को मिलता है, जो बहुत से आलोचकों को उनकी आलोचना करने का साधन दे देता है। इसी नयेपन को तलाशना और उनके आलोचकों के आरोपों में कितनी सच्चाई है, इसे परखना इस शोध-लेख का उद्देश्य है।

मूल शब्द: कविता, नयापन, नई कविता

प्रस्तावना

तीसरे सप्तक के कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य और निर्भयता के कवि हैं। तीसरे सप्तक के अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा है "जो सत्य है उसे चुपचाप अपनाए रहने भर से काम नहीं चलेगा बल्कि जो असत्य है उसका विरोध भी करना पड़ेगा और मुंह खोल कर कहना पड़ेगा कि वह गलत है"।[1] सर्वेश्वर जब कवि के रूप में उभरे तब हिंदी साहित्य में नई कविता का दौर चल रहा था और यह छायावाद, प्रगतिवाद के सारे मानदंडों को तोड़कर एक नई जीवनदृष्टि और काव्य शैली को लेकर काव्य जगत में अवतरण कर रही थी। इसका जन्म युग-सत्य और युग-यथार्थ से हो रहा था। इस समय की परिस्थिति भारत में ही नहीं विश्व में बहुत तेजी से बदल रही थी। एक तरफ द्वितीय विश्व युद्ध की भयावहता का सामना करते हुए जहां जनता समाजवादी और तानाशाही ताकतों से छूटने के कगार पर थी, वहां दूसरी तरफ पूंजीवाद की जड़ें भारत में पड़ चुकी थीं। मनुष्य के रिश्ते बाजारवाद की भेंट चढ़ते हुए विक्षिप्तता और मूल्यांधता को जन्म दे रहे थे। ऐसी एक व्यवस्था का जन्म हो रहा था जहां मनुष्य अपने आपको निरर्थक महसूस कर रिक्त हो रहा था। मनुष्य की इस निरर्थकता और रिक्तता को भरने के लिए नई कविता का जन्म होता है। नयी कविता पहले से चली आ रही पुरानी रूढ़ी को ढोना नहीं चाहती थी। वह एक ऐसा नयापन लाना चाहती थी जो समसामयिक जीवन का दस्तावेज बन सके।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता का नयापन

नये कवियों ने समकालीन जीवन को सार्थक अभिव्यक्ति देने के लिए, वस्तु के क्षेत्र में साथ-साथ रूप के क्षेत्र में भी बहुत कुछ नया प्रयोग किया। सर्वेश्वर जो नए कवियों के पुरोधा थे, पहले से चली आ रही हिंदी साहित्य की दो धारा कलावादी और जनवादी का विरोध करते हुए लिखा था "कलावादी चाहता है कि समसामयिक सामाजिक राजनीतिक यथार्थ से कटकर प्रेम प्रकृति अध्यात्म जैसे शाश्वत विषयों पर लिखा जाए और जनवादी चाहता है कि इन शास्वत विषयों को तिलांजलि देकर केवल शोषण एवं जन समस्याओं पर ही लिखा जाए; वह भी उनके संगठन के चश्मे से देखकर। जनवादी समीक्षा के पास कलादृष्टि नहीं है, कलावादी समीक्षा के पास जनवादी दृष्टि नहीं है। एक को जन से प्रयोजन है, एक को कला से। हमें दोनों से प्रयोजन है- कला से, जन से भी। हम एक समग्र दृष्टि चाहते हैं, अधूरी दृष्टि नहीं अपनाते। हम समग्रता में विश्वास रखते हैं न कि एक ही तरह आंतरिक यात्रा को ही सब कुछ मानते हैं। हमारी निजता भी समाज का हिस्सा है। समाज से ही हमारी निजाता की पहचान बनती है"।[2] इन दो अतिवादियों के रास्ते से निकल कर उन्होंने एक नया रास्ता बनाया और नई कविता को एक नया कथ्य और नया रूप दिया। यह कहते हुए उन्हें आलोचकों की तीखी आलोचना सुननी पड़ी, फिर भी एक कठोर संकल्प के साथ अपनी रचना को संभव बनाया।

फिर नई मैं टेक गढ़ता हूं/ भूमि मेरे पैरों के तले न हो फिर भी
हर नए संघर्ष के विष-शृंग चढ़ता हूं।[3]

पैरों के तले भूमि न होने पर भी अर्थात हर जगह विरोध रहने पर भी उन्होंने कविता को संभव बनाया और हर संघर्ष को स्वीकार किया। धिक्कार के बीच सच्चाई को नहीं छोड़ा। खुद दर्प के साथ चले और दुर्बल को हिम्मत भी दी। "मैं नया कवि हूं/ इसी से जानता हूं/ सत्य की चोट बहुत गहरी होती है/ मैं नया कवि हूं/ इसी से मानता हूं/ चश्मे तले की दृष्टि बहरी होती है/ इसी से सच्ची चोट बांटता हूं/ झूठी मुस्काने नहीं बेचता।/ यदि दुर्बलता, व्यथा, अंतर्दृष्टि /खंडित आस्थाएँ/ संचित कर सके/ शक्ति की समिधाएँ/जो जलकर अग्नि को भी/ गंध ज्वार बना दे/ तो मैंने अपना कवि धर्म पूरा किया/ चाहे मर्म सहलाया ना हो, कुरेदा हो"।[4] उन्होंने हमेशा नया लिखा। झूठी मुस्कान से ज्यादा, सच्ची चोटें उन्हें ग्राह्य थी। यदि सच्ची चोटों से भरी कविता कुछ बदलाव ला सकी, यदि खंडित आस्था मनुष्य को कुछ बेहतर बना सकी तो वही कवि के लिए सब कुछ है। यही बेतुका लगने वाला नयापन उन्हें ग्राहय है। पर पुराने कवियों की तरह झूठी मुस्कान बेचकर जनता को गुमराह करना उन्हें रास नहीं। कविता में इसी झूठी मुस्कान के बोलवाले से व्यथित होकर ही उन्होंने कलम उठाई। उन्होंने लिखा "मैं कविता क्यों लिखता हूं, मैंने कविता क्यों लिखी। कहूं कि किसी लाचारी से लिखी। आज की परिस्थिति में कविता लिखने से सुखकर और प्रीतिकर कोई काम हो सकता है; और मैं नहीं लिखता यदि; हिंदी के आज के प्रतिष्ठित कवियों में एक भी ऐसा होता जिसकी कविताओं में कवि का एक व्यापक जीवन दर्शन मिलता। अधिकांश पुराने कवि छंद और तुk की बाजीगरी के नशे में काव्य विषय की एक संकीर्ण परिधि में घिरकर व्यापक जीवन दर्शन के संघर्ष को भूल नहीं पाए होते और उन्हें कविता के विषय में से निकाल नहीं देते"।[5]

वे पहले के बनाए हुए रास्तों पर नहीं चले और अनिर्मित पथ पर चलने का साहस उन्होंने किया। यही उनकी कविता की खासियत और शक्ति थी। यही शक्ति ही कवि को अपना स्वाभिमान बचाए रखने की क्षमता देती है और इसकी बलबूते वे कहते हैं- "लीक पर वे चलें जिनके/ चरण दुर्बल और हारे हैं/ हमें तो हमारी यात्रा से बने/ ऐसे अनिर्मित पंथ प्यारे हैं"।[6] सर्वेश्वर ने हमेशा विरोधी वातावरण के बीच में भी सृजन को संभव बनाए रखा; अपना रास्ता खुद बनाया। मनुष्य विरोधी परिस्थितियों के बीच संवेदना को मानवीय बनाने के लिए उन्होंने हर कठिन

परिस्थितियों में कला को जीवित रखा। फिर भी वह मानवता के लिए इतने आकुल थे कि उनको लग रहा था कि यह उनकी कविताओं में पूरा का पूरा व्यक्त नहीं हो पा रहा है। वे पूरी मानवता के लिए बेचैन थे "आग मेरी धमनी में जलती है/ पर शब्दों में नहीं ढल पाती/ मुझे एक चाकू दो/ मैं अपनी रगें काट कर दिखा सकता हूं/ कि कविता कहां है"।[7] यह उनकी मानवता के प्रति आस्था का प्रमाण है कि वह हर प्रकार के आत्मसंघर्ष से गुजरते रहे। इस आत्मसंघर्ष से गुजरते हुए उन्होंने कविता को भी बहुत कुछ नया दिया।

प्रकृति के उनके नए चित्रण के बारे में आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा है "सर्वेश्वर काव्य की आधरपरक पृष्ठभूमि प्रकृति है। झूठे आवेग तथा आवेश की स्थान पर प्रकृति का जीवन सहचर्य चित्रित किया गया है। सर्वेश्वर ने छायावादी परंपरा का नया उपयोग इस अर्थ में किया है कि संध्या के दृश्य उनके पंत- प्रसाद-निराला के भांति न होकर, उनके अपने अनुभवात्मक संसार के भीतर से गुजरे-सुधारे दृश्य है। कल्पना अतिरेक ने छायावादी प्रकृति को मादक ढंग से बहका-बहका रूप दिया है। वहां नई कविता के कवियों ने विशेषकर सर्वेश्वर ने प्रकृति को कवि की भांति नहीं एक आम आदमी की जागरुक संवेदना शक्ति से जिया, फिर व्यक्त किया है"।[8] सर्वेश्वर की कविता में प्रकृति एक गहरे यथार्थ को लेकर उतरती है। "नए साल की शुभकामनाएं/ खेतों की मेढ़ पर धूल भरे पांव को/ कुहरे में लिपटे/ उस छोटे से गांव को/ नए साल की शुभकामनाएं।/ जोत के गीतों को/ बैलों के चाल को/ करघे को, कोल्हू को, मछुए के जाल को"।[9] प्रकृति का यह दृश्य छायावादी कवियों की तरह कपोल-कल्पित नहीं; यथार्थ अनुभव से उपजा-सिरजा हुआ चित्र है। बिना अनुभव के कोई कैसे खेतों की मेढ़ पर धूल भरे पांव की कल्पना कर सकता है। यह सिर्फ ग्रामीण प्रकृति का चित्रण भर नहीं है, धूल भरे पांव वाले किसान और छोटे छोटे गांव के प्रति गहरे लगाव का प्रमाण भी है। सर्वेश्वर की कविता का एक और नयापन अभिव्यक्ति का खुलापन भी है। छायावादी कवि जहां एक रहस्यात्मकता के कुहेलिका में अपने को लुकाछिपा रहे थे; अपने अंतर जगत को प्रकृति को सौंपकर निश्चित हो जाते थे, वहां नए कवि विशेषकर सर्वेश्वर अपने अंतर जगत को सीधे-सीधे प्रकट करने में ही थकते नहीं दिखते हैं। मुक्तिबोध की भाषा में अभिव्यक्ति के खतरो को उठाकर वे अपने अंतर जगत को हू-ब-हू व्यक्त करते थे। अभिव्यक्ति के अपने व्यक्तित्व के खरेपन के बिना वह कैसे मौकापरस्त लोगों पर व्यंग करते हुए यह लिख सकते थे कि-

"एक थे हां हां/ एक थे नहीं नहीं/ जहां जहां गया मैं /मिले मुझे वहीं वहीं।[10]

सर्वेश्वर अपनी अनुभूति को अपनी कल्पना से जोड़कर उसे अलंकृत करने के बजाय, इसे मूर्त और ठोस बनाते हैं। इससे एक तरफ कविता की संप्रेषणीयता बढ़ती है तो दूसरी तरफ स्वच्छता झलकती है। वह इस स्पष्टवादिता के चलते, किसी भी विचारधारा से एकदम जुड़ते नहीं दिखते। किसी विचारधारा के साथ लिखना कहीं न कहीं उस व्यक्ति के लिए खतरा उत्पन्न कर देता है। वह तमाम विचारधाराओं से, जो लेना है वे लेते हैं; उसे कोल्हू के बैल की तरह ढोते नहीं। उनकी कविता पर गांधीवाद, मार्क्सवाद, लोहियावाद का प्रभाव मिल सकता है, पर यह कविता की अपनी समझ के स्तर पर रचा-पचाया होकर कविता में प्रकट हुआ है; विचारधाराओं के सिद्धांतों के आधार पर नहीं। कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा है "सर्वेश्वर किसी एक विचारधारा के कवि न होकर विचारधाराओं के गतिशील मूल्यों के कवि हैं"।[11] सर्वेश्वर ने विचारधाराओं की अतिवादिता पर प्रहार करते हुए लिखा है -

"साम्यवाद या पूंजीवाद/ मैं दोनों पर थूकता हूं/ और पूछता हूं
जिसके पैर में तुम जूते नहीं दे सकते/ उनके हाथ में तुम्हें/
बंदूक देने का क्या अधिकार है?"।[12]

वे वादों के गतिशील मूल्यों को आत्मसात कर उसे छोड़ देते हैं, उनके हर सिद्धांत पर चलते नहीं। जो विचारधारा लोगों को अपनी गरीबी से उभरने का उपाय न बतलाकर, उसके हाथ में बंदूक थमाती है, वह आम आदमी के लिए कुछ भी नहीं कर सकती। अतः वह किसी भी विचारधारा के साथ सीधा जुड़ते नहीं दिखते हैं। नई कविता का परिवेश ऐसा था कि सभी को अपने व्यक्तित्व की ओर जागरुक होना स्वाभाविक था। यह व्यक्तिबोध सर्वेश्वर में भी है, परंतु इसमें उनका नयापन यह था कि उन्होंने कभी अपने व्यक्तित्व को समाज के, युग के परिवेश को चुनौती देने वाले दर्पपूर्ण अहम के रूप में नहीं देखा। इसमें व्यक्ति और युगजीवन का नीरक्षीर संयोग है। कवि ने अपने व्यक्तित्व को अपनी आत्मचेतना के साथ-साथ, समष्टि-चेतना को अभिव्यक्ति के लिए माध्यम बनाया है। अपने व्यक्तित्व को माध्यम बनाने के लिए शायद वह यह आग्रह करते हैं कि -

जितनी भी ध्वनि शेष है/ इन सूखी रगों में/ तजो
ओ काठ की घंटियां/ तजो।[13]

काव्य भाषा और शैली आदि के क्षेत्र में इन्होंने नए प्रयोग भी किए। तत्कालीन समय के राजनीतिक-सामाजिक सांस्कृतिक संकट को संप्रेषणीय बनाने के लिए बोलचाल की भाषा को ही अपनी काव्य भाषा के रूप में स्वीकारा। यह भाषा ग्राम की संवेदना शक्ति से भी लैस है और काव्यात्मक सृजनात्मकता से भी। कवि ने जीवन के यथार्थ से लोगों को साक्षात्कार कराने के लिए सच्ची स्वस्थ भाषा को अपनाया और उनका विरोध किया, जो एक गलत भाषा का प्रयोग कर अपनी अभिव्यक्ति को गलत बनाते थे। उनकी इस तरह की सहज संप्रेष्य, गत्यात्मक भाषा पर प्रहार करने वालों के प्रति अपना विद्रोह व्यक्त करते हुए लिखा है - उल्लुओं की जबान में/ कोयल गा सकती है तो गाए/ जिसे सिखाना हो उसे सिखाए/ हमारे पास बहुत कम वक्त शेष है।/ एक गलत भाषा में/ गलत बयान देने से/ मर जाना बेहतर है।/ यही हमारी टेक है/ और अब छीनने आए हैं वह हमसे हमारी भाषा/ यानि हमसे हमारा रूप/ जिसे हमारी भाषा ने गढ़ा है"।[14]

उन्होंने पुराने बिम्बों-प्रतीकों को भी तोड़ा और जीवन से नये बिम्बों-प्रतीकों को लेकर अपनी कविता को सार्थक बनाया। भाषा के आभिजात्य को तोड़ कर ही युग यथार्थ को पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त किया जा सकता था और सर्वेश्वर ने यह किया। इस प्रकार सर्वेश्वर वस्तु और रूप के क्षेत्र में एक नयेपन को लेकर आए और मानवता के लिए उनका संघर्ष बहुत सार्थक को पाया।

संदर्भ सूची

1. अज्ञेय- तीसरा सप्तक – ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 1959, पृ 120
2. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल- चरचे और चरखे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1986, पृ 197-198
3. अज्ञेय- तीसरा सप्तक – ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 1959,–पृ 229
4. अज्ञेय- तीसरा सप्तक – ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 1959, पृ 218
5. अज्ञेय- तीसरा सप्तक – ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 1959, पृ 200
6. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल- कविताएं – दो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1978, पृ 39
7. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल- कुआनों नदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1994, पृ 90
8. पालीवाल,कृष्णदत्त- सर्वेश्वर और उनकी कविताएं, लिपि प्रकाशन, दिल्ली 2 1979 पृ 35
9. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल- कविताएं –एक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1978, पृ 89

10. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल- कविताएं – दो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1978, पृ 111
11. पालीवाल,कृष्णदत्त - सर्वेश्वर और उनकी कविताएं, लिपि प्रकाशन, दिल्ली 2 1979 पृ 35
12. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल- कविताएं – दो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1978, पृ 61
13. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल- कविताएं –एक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1978, पृ 168
14. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल- कविताएं – दो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1978, पृ 102